International Journal of Multidisciplinary Research and Development

Volume: 2, Issue: 5, 372-374
May 2015
www.allsubjectjournal.com
e-ISSN: 2349-4182
p-ISSN: 2349-5979
Impact Factor: 3.762

सरिता आर्या
सह–आचार्या
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
घरौंडा, (करनाल) हरियाणा।

Correspondence:
सरिता आर्या
सह–आचार्या
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
घरौंडा, (करनाल) हरियाणा।

"पृथ्वीराज रासो" कृति के सांस्कृतिक पक्ष का विश्लेषण

सरिता आर्या

समाज एवं संस्कृति का पूर्ण प्रतिबिम्ब तत्कालीन साहित्य में देखने को मिलता है। इतिहासकारों का ऐसा मानना है कि समसामयिक साहित्य इतिहास, समाज, सभ्यता व संस्कृति का दर्पण होता है जो उसकी वास्तविक छवि को दर्शाता है। समाज के वास्तविक सांस्कृतिक मूल्यों की जानकारी व उसकी शिक्षा पद्धति का भी ज्ञान करवाता है।

पृथ्वीराज रासो के रचयिता चन्दबरदाई थे। यह ग्रंथ पृथ्वी राज चौहान के क्रिया–कलापों का प्रमाणिक ग्रंथ है। चन्दबरदाई पृथ्वी राज चौहान के बचपन के साथी थे। चन्दबरदाई का जन्म लाहौर में हुआ था। इनका पूरा नाम चन्दरबराई ब्रह्मभट्ट था और इसका गोत्र 'जगात' था। इनके पूर्वज अजमेर के चौहानों के परम्परागत 'राजभट्ट' थे। इन्होंने षड्भाषा व्याकरण, छन्द, संगीत और वैदिक विद्या का बहुत गहनता से अध्ययन किया था तथा इन में महारथ हासिल थी। इसके साथ–साथ ये वीर यौद्धा भी थे। इन्होंने कई युद्धों में भी भाग लिया था। जिसका वर्णन रासों में मिलता है। चन्दबरदाई को रासो लिखने की प्रेरणा अपनी पत्नी से मिली, परन्तु यह इस काव्य ग्रन्थ को पूरा न कर सके और इसको पूरा करने का कार्य इनके योग्य पुत्र 'जल्हण' ने किया। इनमें एक राजा तो दूसरा महान् कवि था।

पृथ्वीराज रासो में इस वंश की उत्पत्ति ऋषि वशिष्ठ के अग्नि कुण्ड से बताई है। चाहमान वंश में पृथ्वीराज तृतीय का शासन व पूर्ण जीवन काल का समय 1177 ई॰ से 1192 ई॰ दिया गया है। यह सोमेश्वर का पुत्र और विग्रहराज चतुर्थ का भतीजा था। सिंहासन पर बैठने के समय इसकी आयु केवल पन्द्रह वर्ष थी। एक वर्ष के समय तक इनकी माता कर्पूरदेवी ने मन्त्री कदम्बवास की सहायता से राज–काज का कार्यभार संभाला। जयचन्द्र का राजसूय यज्ञ और संयोगिता का प्रेमानुष्ठान इसी समय पर हुआ था। जयचन्द्र कन्नौज का शासक था, जोकि धार्मिक प्रवृति का था इसलिए उन्होंने कीर्ति–वर्धन के लिए राजसूय यज्ञ किया तथा सम्पूर्ण पृथ्वी ताल के अनेक राजाओं पर विजय प्राप्त की। जयचन्द ने पृथ्वीराज के पास भी दूत भेजे कि वह भी राजसूय यज्ञ में सहयोग करे। पृथ्वीराज चुप रहा, लेकिन उसके गुरु चन्द्र गोविन्दराज ने जयचन्द के प्रस्ताव का विरोध किया क्योंकि वह पृथ्वीराज को ही राजा मानता था। पृथ्वीराज ने शहाबुदीन को तीन बार बन्दी बनाया था। उसने कहा कि जब तक पृथ्वीराज के कन्धों पर सिर है तब तक राजसूय यज्ञ नहीं हो सकता । यह सुनकर कन्नौज के दूत वापिस लौट गए। यह सब सुनकर कन्नौज के शासक जयचन्द्र ने पृथ्वी राज की सोने की मूर्ति बनवा कर द्वारपाल के रूप में द्वार के सामने खड़ी कर दी। जयचन्द्र ने राजसूय यज्ञ के साथ–साथ अपनी कन्या संयोगिता के स्वयंवर की भी तिथि निश्चित की।

यह सब सुनकर पृथ्वीराज ने कन्नौज पर चढाई करने का निश्चय किया व जयचन्द की कन्या संयोगिता ने पृथ्वीराज के वरण का व्रत लिया कि पृथ्वी राज का पाणिग्रहण करेगी, नहीं तो, गंगा में कुद कर अपनी जान दे देगी। पृथ्वीराज ने संयोगिता से पाणिग्रहण कर आपसी मिलन किया, तदुपरान्त वह युद्ध में विजय होने के बाद संयोगिता के पास गया और वह खुशी–खुशी उसके साथ चलने के लिए तैयार हो गई।

भारतीय संस्कृति में सहिष्णुता, उदारता, सदभावना का एक विशिष्ट गुण विद्यमान है। जो भारतीय संस्कृति, सभ्यता को संजोए हुए है। ठीक उसी प्रकार पृथ्वीराज रासो भी एक संस्कृति को अपने अन्दर समेटे हुए है। जो राजपूत परिवारों के आमोद–प्रमोद, उनके गीतों की समरसता, परिधानों की चटक, त्यौहारों में उल्लास के संचार का एक महत्त्वपूर्ण तत्व है। उस समय की स्थापत्यकला में एक नवीनता है जिसमें जीवित परम्पराएं लक्षित होती है। चाहे वह दुर्ग हों, या मन्दिर, उनमें दर्शाय गये शिल्प संवेगों की अभिव्यक्ति के अच्छे उदाहरण मिलते हैं। संस्कृति समाज की जीवनविधि है।

संस्कृति में मूल्यों, विश्वासों, आचार सम्बन्धी, नियमों, सामाजिक, प्रतिमानों राजनैतिक व आर्थिक संगठनों का समावेश होता है। पृथ्वीराज रासो में संस्कृति का अति महत्त्वपूर्ण समावेश मिलता है।

चाहमान वंश का उदय शांकभरी (सांभर–अजमेर के आसपास का क्षेत्र) में हुआ। इनके प्रारम्भिक राजाओं में वासुदेव और गूवक हैं। इस वंश का प्रथम दुर्लभ लेख वि॰ स॰ 1030–973 ई॰ का है। जिसे हर्ष ने खुदवाया था। यह लेख गूवक की प्रथम वंशावली को पीछे वासुदेव तक ले जाता है।

चाहमानों की शक्ति का विस्तार अर्णोराज के पुत्र चतुर्थ विग्रहराज बीसलदेव (1153 ई॰ से 1164 ई॰) के समय में हुआ। इसके बाद से बीसल देव के पुत्र अपर गांगेय को बीसल के ही भतीजे पृथ्वीराज द्वितीय ने राज्य का मौका नहीं दिया। पृथ्वीराज का उत्तराधिकारी बीसल का सबसे छोटा भाई सोमेश्वर हुआ। सोमेश्वर का पुत्र और उत्तराधिकारी चाहमान वंश का सबसे प्रसिद्ध और अन्तिम शक्तिशाली राजा पृथ्वीराज तृतीय (1179–1193 ई॰) था। इसके पूर्ण व्याख्यान व ताकत का पूर्ण सार चन्दबरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो में मिलता है। बीसल देव के काल से ही चाहमानों और गहड़वालों की आपसी प्रतिद्वन्दिता चल रही थी। पृथ्वीराज और गाहड़वाल राजकुमारी संयोगिता के प्रेम विवाह के लोकप्रिय कथानक के पीछे इस वंशीय वैर को छिपाया नहीं जा सकता।

संस्कृति की रूपरेखा देखने–समझने के लिए उसके सामाजिक पहलुओं का पालन करना भी अति आवश्यक है। पृथ्वीराज रासो में एक संस्कृति के सामाजिक पहलू को गहनता से दर्शाया गया है। इस काल में वर्ण–व्यवस्था, आश्रम–व्यवस्था, संस्कार, सती–प्रथा, बहुविवाह, जौहर आदि सामाजिक–परम्पराएं व रीति–रिवाज का उल्लेख मिलता है।

ऐसा उल्लेख किया गया है कि समाज के गुण–कर्म, कबीलों और आगन्तुकों के आपसी व्यवहार की वजह से इनका विभाजन होता रहा। सामाजिक वर्गीकरण को ही वर्ण–व्यवस्था कहा गया है, ब्राह्मण, यौद्धा, क्षत्रिय, कृषक, व्यापारी, वैश्य व घरेलू सहायक शुद्र कहलाये।

इस ग्रंथ में आश्रम–व्यवस्था का उल्लेख मिलता है। इसके प्रथम अध्याय में भौतिक तथा पारलौकिक जीवन को योजना बद्ध तरीके से जीने का वर्णन किया गया है तथा दूसरे अध्याय में कुटुम्ब और तीसरे अध्याय में श्रम और चौथे अध्याय में पारलौकिक चिन्तन का वर्णन है।

व्यक्तिगत जीवन में संस्कार का बहुत महत्त्व है। जिसमें धर्मनिष्ठा के अनुरूप सोलह संस्कारों का वर्णन है जिसमें मुख्यतः सीमान्तोनयन नामकरण, उपनयन, विवाह, अन्येष्टि आदि संस्कार का जीवन में अति महत्त्व है।

सतीप्रथा का वास्तविक वर्णन राजस्थानी संस्कृति में विस्तृत रूप से मिलता है। इस प्रथा में मृत पति के साथ उसकी पत्नी को भी स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा के लिए जीवित जल जाना होता था। पृथ्वीराज ने कैमास की पत्नी को उसके पति का शव दिया। वह अपने पति के साथ सती हो गई। तड़ाग पर बीसलदेव को सर्प डस लेता है जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है और यह मार्मिक दृश्य उसकी रानी देखकर सती हो जाती है।

प्राचीन काल में राजा–महाराजाओं की अनेक पत्नियां होती थीं। बिना विवाह के कोई भी पत्नी स्वीकार नहीं की जाती थी। पृथ्वीराज की आठ रानियां थी। पृथ्वीराज वसन्त ऋतुओं में वछिनी के पास, ग्रीष्म में पुडीरनी, वर्षा में इन्द्रावती, शरद में हंसारती, हेमन्त में कुररभी, शिशिर में हम्मीरनी के पास रहते थे। यह उस समय की यह एक विस्तृत प्रथा थी।

समय परिवर्तन होते हुए अनेक प्रथाओं ने जन्म लिया जिसमें जौहर–प्रथा भी काफी प्रभावपूर्ण रही, जिस तरह से सतीप्रथा का उल्लेख मिलता है। इसमें युद्ध में गए हुए सैनिक व राजा की पत्नियां उनके युद्ध से न आने की स्थिति में किसी बाहरी राजा का आक्रमण होने पर वो सब एक ही साथ अग्नि में भष्म हो जाती थी। अतः इस ग्रंथ का एक सांस्कृतिक मूल्यांकन देखा जाए तो इसमें कई राजाओं को सौद्रता के साथ–साथ संस्कृति के ऐसे पहलु भी सामने आते हैं जिससे समाज, संस्कृति व सभ्यता के परिवेश की एक भयानक झलक दिखाई पड़ती है।

इस ग्रंथ में ब्राह्मण, जैन, बौद्ध और मुस्लिम इन चारों धर्मों का उल्लेख मिलता है। रासों काल में उत्तर भारत की अधिकांश जनता चातुर्वर्ण–व्यवस्था वाले ब्राह्मण धर्म का अनुयायी थी। उस समय साकार व निराकार उपासना की दोनों ही पद्धतियां हिन्दु समाज में प्रचलित थी। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश, सरस्वती, लक्ष्मी आदि देवी–देवता की पूजा की जाती थी। इस ग्रंथ में दशावतार पूजा का वर्णन किया गया है जो विष्णु की महिमा का द्योतक है। 12वीं शताब्दी के जयदेव ने भी अपने गीतगोविन्द में दशावतारों की वंदना की है। विष्णु के त्रिमूर्ति रूप से इनका सम्बन्ध जोड़ा गया है। जिसका नाम 'अथ दशम' है जिसमें 536 छन्दों में दशावंतारों का वर्णन मिलता है। जो शिव हैं। पृथ्वीराज रासों में क्षत्रिय कुमारियों के जीवन वृत्तांत का वर्णन मिलता है। जिसमें समुद्ध दशिश्वर की पद्मवती और देवगिरी की शशिवृत्ता का शिव मन्दिरों से ही चौहान सम्राटों द्वारा अपहरण किया गया था। इस ग्रंथ में शिव के अनेक रूपों की व्याख्या मिलती है, जिसमें देवगिरी दुर्ग, गोकर्णेश्वर, चितौड़ निगम बोध, तैलगदेश और हरद्धार के शिव मन्दिरों का वर्णन किया है। चन्दरबरदाई ने शिव के विभिन्न रूपों जैसे भूत–प्रेतों सहित शिव, युद्धभूमि में विचरण करने वाले शिव तथा डमरु बजाकर ताण्डव करने वाल का वर्णन किया है। शिव कराल महाकाल, काल कृपाल भूतनाथ युद्ध भूमि में पार्वती को क्षत्रियों के जीवन और मरण की व्याख्या समझाते हुए दिखाई देते है। शिव और विष्णु सम्बन्धी विवरण इस निचौड़ पर पहुंचाते है कि रासो काल में शिव और विष्णु की पूजा प्रधान थी। विष्णु का विशेष स्थान था। विष्णु के राम और कृष्ण रूप ही अधिक महिमापूर्ण थे। अलबरुनी ने जहां मुलतान की लकड़ी की सूर्य–मूर्ति आदित्य की व्याख्या की है। वहीं थानेश्वर की कांसे की मानव–आकार वाली विष्णु मूर्ति की भी चर्चा की है। इन सबके अलावा कई अन्य देवता मुख्य रूप से प्रतिष्ठित थे जिनमें शक्तिपूजा, सरस्वती, गणेश, इन्द्र, वरुण, गंधर्व, यक्ष, नारद, भैरव, भूत प्रेत बैताल, पिशाच, पलचर, योगिनी और गौरखनाथ इत्यादि का भी उल्लेख मिलता है।

साधु, ऋषि–मुनि, तपस्वी, व्रता रासो काल में संसार से विरक्त, विशिष्ट वेश, भूषा वाले साधु, वनों, पर्वतों, कन्दराओं में तपस्या में लीन रहते थे और जन समाज में भी विचरण करते रहते थे। वे जनता की श्रद्धा एवं आस्था के प्रतीक थे।

बौध धर्म का रासों में एक ही स्थान पर वर्णन मिलता है। राजा बीसलदेव के पुत्र सारंग देव अपनी धा बहिन वर्णिक पुत्री गौरी के पति की सिंह से मृत्यु हो जाने पर दुःखी मन के कारण बौद्ध धर्म की पूजन पद्धति आरम्भ की और तलवार धारण करना छोड़ दिया। यह सब सुन कर राजा बहुत दुखी हुआ। उसने कुमार को बुलाया और एक क्षत्रिय के गुणों की व्याख्या कर उसे समझाया तथा बौद्ध धर्म को छोड़ने व "सौभर–प्रदेश पर शासन करने के लिए भेज दिया।

जैन धर्म का सम्बन्ध गुजरात के संदर्भ में मिलता है। जिसको जैन धर्म का प्रबल केन्द्र माना जाता था। सन् 1173 ई॰ में गुर्जरेश्वर कुमार वाल के राज्य की देखभाल उन राजनीतिज्ञों द्वारा की जाती थी, जिन पर जैनाचार्य हेमचन्द्र का प्रभाव था। गुजरात के राजा भीमदेव चालुक्य वैदिक धर्म त्यागकर जैन धर्मानुयायी हो गया। इसमें ब्राह्मण व जैनों के आपसी सामाजिक सम्बन्ध के उल्लेख भी मिलते हैं। भीमदेव चालुक्य ने जैन धर्मानुयायी होने पर भी आबू के राजा सलाख प्रमार ने अपनी कन्या मन्दोदरी का उसके साथ विवाह कर दिया था। जैन धर्म में देखा जाए तो बहु–विवाह प्रथा भी प्रचलित थी।

रासो में मुस्लिम धर्म का उल्लेख एक सामाजिक उत्थान व आपसी प्रेम सम्बन्ध बनाने के लिए किया गया है। इस धर्म को राजनैतिक पहलु से दूर रखा गया था। इसमें आपसी संस्कृतियों के मिलन की व्याख्या की गई है। नया धर्म, नई संस्कृति और नई भाषा के प्रवर्तक मुसलमानों का विस्तार आठवीं शती में सिन्ध पर हो गया था। "मुहम्मद अब्दुलगनी' ने यह लिखा है कि ईरान निवासी अरब वंशजों ने सिन्ध में आकर देशी भाषाओं का अध्ययन किया। उनमें हिन्दी कवि भी हुए, जिनकी कृतियां हिन्दू राजाओं के दरबार तथा जनता द्वारा प्रशस्ति हुई। वे अरबी घराने (परिवार) जो सिन्ध में आबाद हो गये थे। प्राकृत भाषा से सुपरिचित थे। इन कवियों ने हिन्दी और अरबी दोनों में काव्य लिखे। इस ग्रंथ में भारतीय हिन्दू रईसों के यहां मुसलमानों के रहने का वर्णन मिलता है। कई स्थानों पर मुसलमानों की काफी आबादी थी जिनमें बदायूं, अजमेर, नागौर,

कन्नौज आदि थे। 1165 ई॰ में पृथ्वीराज के शासन काल में ख्वाजा मुईनदीन चिरती अजमेर में आबाद हो गये थे।

संस्कृति के आन्तरिक पहलुओं जैसे आचार–व्यवहार, खान–पान, रहन–सहन, वेष–भूषा इत्यादि का गहनता से ध्यान देने पर पता चलता है कि उस समय कि संस्कृति किस प्रकार की थी। उस समय की नारी की स्थिति का ज्ञान भी होता है। इसके अलावा उस समय की शिक्षा का स्तर किस प्रकार का था इस ग्रंथ में इसकी भी व्याख्या की गई है। सामाजिक–संस्कृति के उस समय कई रूप थे जो मानव उपयोगी थे। उस समय लोक उत्सवों का भी वर्णन मिलता है जैसे गणगौर, तीज, होली, दशहरा, दीपावली, रक्षाबन्धन, जन्माष्ठमी, गणेश चतुर्थी, शरद पूर्णिमा, बसन्तपंचमी, नाग पंचमी, पूजा कीर्तन व्रत आदि थे। ये संस्कृति के मूल मंत्र माने जाते थे।

इसमें समाज के पूर्ण ढांचे, प्रेम–व्यवहार, खानपान, मेल–जोल रहन–सहन इत्यादि का ज्ञान होता है। सामाजिक पहलुओं से समाज को आगे बढाना और उपयुक्त शिक्षा से समाज का निर्माण करने में भूमिका अदा करता है। पृथ्वीराज रासो में वर्णन है कि अपनी शिक्षा को पूर्ण करने के पश्चात् अपने गुरु को उसकी गुरु दक्षिणा देकर सम्मान देना अति आवश्यक था। कई स्थानों पर गुरु दक्षिणा में गुरु की धर्मपत्नी को कुण्डल भेंट किये जाते थे। ऐसे कई रूपों में शिक्षाप्रद घटनाएं हुई। शिक्षा मानव को एक योग्य नागरिक बनाती है। जिससे समाज का निर्माण हो सके और जो अपनी सभ्यता संस्कृति को बचाने में कामयाबी प्राप्त कर सके।

शिक्षा के मूल पहलुओं का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि शिक्षा का आरम्भ पांच से आठ वर्ष की आयु से आरम्भ हो जाता था। इस अवस्थाओं में बच्चे को गुरु के आश्रम में छोड़ा जाता था। शिक्षा के केन्द्र भीनमाल व अजमेर थे। भीनमाल में पैंतालीस हजार ब्राह्मण विद्या ग्रहण करते थे। यहां पर वेदों, षष्ठ अंगों, व्याकरण प्रणाली, चौदह विद्याओं, अठारह पुराणों, आयुर्वेद नाट्यशास्त्र, ज्योतिष अश्वशास्त्र इत्यादि ग्रन्थों का अध्ययन करवाया जाता था।

शिक्षा के क्षेत्र में नारी की स्थिति कुछ उपयुक्त नहीं थी। इसके साथ–साथ पुरुष और स्त्री के आपसी पहनावे में भी काफी परिवर्तन था। कुछ स्थानों पर नारी का सम्मान भी दिखाई पड़ता है।

पुरुषों में ज्यादातर पल्लेवाड़ी पगड़ियां, दुपट्टे, कसीदा की गई धोतियां इत्यादि का उल्लेख मिलता है। वही एक साधारण स्त्री के पहनावे में जामदानी किररवाण टसर, घीट, मलमल, पारचा मसाऊ, चिक इलायची, महमूदी चिक, मीर–ए बादला, नौरंग शादी, मोमजामा, चुदंड़ी, लहरिया राजस्थानी साड़ियां काफी लोकप्रिय थी। विभिन्न प्रथाओं में नारी की स्थिति काफी मार्मिक दिखाई पड़ती है। उनके जीवन की ढोर उनके हाथ में नही थी। ऐसा प्रतीत होता है कि उनकों तो एक खिलौने के रूप नाचना पड़ता था। रूढ़ी प्रथा की आढ़ में स्त्री के प्राणों को कैसे स्वाह किया जाता था। इसका उल्लेख रासों में मिलता है। सभ्यता एवं संस्कृति के पहलुओं पर इस ग्रंथ में काफी प्रकाश डाला गया है। इससे पता चलता है कि जिस प्रकार अन्धकार को दूर करने के लिए दीपक की आवश्यकता है। ठीक उसी प्रकार पृथ्वीराज चौहान के पूर्ण इतिहास व इसकी संस्कृति के मूल सार को समझने के लिए इस प्रकार के प्रकाश की अति आवश्यकता है। इस काव्य ग्रन्थ में सम्पूर्ण संस्कृति का एक मार्मिक व्याख्या की गयी है। इसमें सभ्यता–संस्कृति, धर्म–शास्त्र, व्यापार, साम्राज्य विस्तार तथा सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक, शिक्षा व नारी इत्यादि विषयों का विस्तृत विवेचन किया गया है।

संदर्भ

1. बोरा राजमल, चन्दबरदाई कृत पृथ्वीराज रासो, 2004, पृ॰ 13
2. वही, पृ॰ 14
3. शर्मा शिव कुमार, हिन्दी साहित्य युग और प्रवृतियां, 1998, पृ॰ 74
4. पाण्डेय बिमल चन्द्र, प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, 1994, पृ॰ 282
5. वही, पृ॰ 286
6. गुप्त माता प्रसाद, पृथ्वीराज रासो, 1975, पृ॰ 98
7. मंडावा देवी सिंह, सम्राट पृथ्वीराज चौहान, 2007, पृ॰ 38
8. शर्मा गोपीनाथ, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, 2007, पृ॰ 53
9. झा द्विजेन्द्र नारायण, प्राचीन भारत का इतिहास, 2011, पृ॰ 368
10. मंडावा देवी सिंह,, सम्राट पृथ्वीराज चौहान, 2007, पृ॰ 39
11. शर्मा गोपीनाथ , सोशल लाइफ इन मेडिवल राजस्थान, 2007, पृ॰ 10
12. शर्मा शिव कुमार, पूर्वनिर्दिष्टि, 1998, पृ॰ 78
13. मंडावा देवी सिंह, पूर्वनिर्दिष्टि, 2007 पृ॰ 41
14. शर्मा गोपीनाथ, पूर्वनिर्दिष्टि, 1998, पृ॰ 129
15. त्रिवेदी विपिन बिहारी, पृथ्वीराज रासो, 1864, पृ॰ 29
16. वही, पृ॰ 30
17. वही, पृ॰ 32
18. वही, पृ॰ 59
19. वही, पृ॰ 60
20. वही, पृ॰ 61
21. शर्मा गोपीनाथ, पूर्वनिर्दिष्टि, 2007, पृ॰ 59
22. त्रिवेदी विपिन बिहारी, पूर्वनिर्दिष्टि, 1864 पृ॰ 66
23. वही, पृ॰ 70
24. शर्मा गोपीनाथ, पूर्वनिर्दिष्टि, 1998, पृ॰ 129–130
25. ओझाा गौरीशंकर, राजपुताना का इतिहास, भाग–1, 1933, पृ॰ 97
26. वही, पृ॰ 98
27. वही, पृ॰ 98
28. त्रिवेदी विपिन बिहारी, पूर्वनिर्दिष्टि, 1864, पृ॰ 72